R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-19, अङ्क-12 दिसम्बर 2019 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख पत्र

मङ्गलायतन

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

तीर्थधाम मङ्गलायतन

में

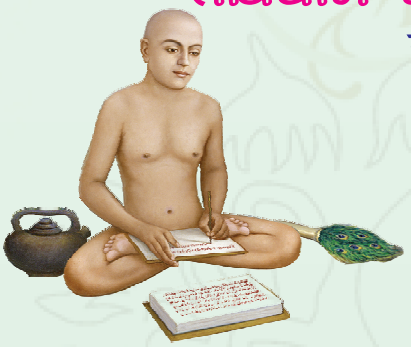

मंगल वात्सल्य प्रभावना शिविर

(शनिवार, 28 दिसम्बर से सोमवार, 30 दिसम्बर 2019)

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इस विद्यालय को 16 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। अत: सभी मङ्गलार्थी छात्र एक साथ एकत्रित होवें, इस हेतु **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, **मङ्गल वात्सल्य प्रभावना शिविर** अध्यात्म, सिद्धान्त एवं जिनवरों की भक्तिपूर्वक सम्पन्न होगा।

विद्वत समागम - बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन, खनियांधाना; पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां; डॉ. राकेश शास्त्री, नागपुर; डॉ. योगेशचन्द जैन, अलीगंज; एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि का लाभ प्राप्त होगा।

सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216, हाथरस (उ.प्र.)
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-19, अङ्क-12 (वी.नि.सं. 2546 ; वि.सं. 2076) दिसम्बर 2019

अन्तर आनन्द के रसिया...

अन्तर आनन्द के रसिया, तीर्थंकर नाथ हमारे।
मंगल मय मंगलकारी, सांचे मित्र हमारे॥
सांचे मित्र हमारे प्रभु जी लागे जग से न्यारे...
अन्तर आनन्द के रसिया।टेक॥

सुरगण बालक रूप धर, प्रभु संग खेले खेल।
अनन्त गुणों को जोड़कर, चली मुक्ति की रेल॥
अरे सिद्धपुरी की सैर को चालो प्रभु संग सारे... ॥1॥

जनम मरण क्षय कारने, लियो है अन्तिम जनम।
निजानन्द में केलि कर मेट दिये सब करम॥
सिद्धों सम साथी पाके जागे भाग्य हमारे.... ॥2॥

तीन ज्ञान संग जनम ले खेले ज्ञान का खेल।
अनुभव के उद्यान में रहती चहल पहल॥
समकित के क्रीड़ावन में निज चैतन्य निहारे.... ॥3॥

साभार : मङ्गल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती जिनेन्द्रमाला
धर्मपत्नी स्व. श्री हेमचन्द जैन
हस्ते श्रीमती पूनम देवेन्द्र जैन
सहारनपुर (उ.प्र.)

क्या - कहाँ

मोक्षमार्ग के फाटक खोलने की रीति	5
श्री समयसार नाटक...	9
वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता	16
आत्मार्थी का पहला कर्तव्य—5	19
आचार्यदेव परिचय शृंखला	23
प्रेरक-प्रसंग	26
समाचार-दर्शन	28

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

[योगीन्दुदेवकृत योगसार गाथा 16-18 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन से]

मोक्षमार्ग के फाटक खोलने की रीति

[आत्मदर्शन ही एक मोक्ष का उपाय प्रगट करनेवाला है, अन्य नहीं]

[धर्मी को शुद्धात्मा समीप ही है, उसमें से मोक्षमार्ग आता है, और रागादि तो चैतन्यस्वभाव से दूर ही हैं, अत: उनमें से किंचित् भी मोक्षमार्ग नहीं आता। अपने शुद्ध आत्मा का परम मूल्य भासित हो तो उसमें उपादेयबुद्धि बनती है, उसी जीव की स्वसन्मुख परिणति होती है और मोक्षमार्ग उसे ही प्रगट होता है। इसलिए प्रथम सम्यग्ज्ञानी के सत्समागम द्वारा उस की तीव्र जिज्ञासा जागृत करना ही चाहिए, ऐसे जिज्ञासु जीव को चारों गति और राग का रस रुचि में से चला जाता है और शुद्धात्मा का रस बहुत बढ़ जाता है। पश्चात् आनन्दसहित मोक्षमार्ग खुल जाता है। यह मोक्षमार्ग का दरवाजा खोलने की रीति सन्तों ने बतायी है।]

अप्पा दंसणु एक्कु परु अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहं कारण जोइया णिच्छइ एहउ जाणि॥१६॥

देखो, यहाँ मोक्ष का कारण बतलाते हैं। मोक्ष का निश्चयकारण निज-आत्मदर्शन ही है, अन्य कुछ मोक्ष का कारण नहीं है—ऐसा हे जीव! तू जान।

मोक्ष का द्वार कैसे खुलेगा? कि-अपना महान मूल्यवान जो आत्मस्वभाव, उसका सम्यक् प्रकार दर्शन-श्रद्धान-अनुभवन ही मोक्ष का कारण है; वही श्रेष्ठ है; उसके सिवा दूसरा कोई श्रेष्ठ नहीं है अर्थात् पराश्रितभाव—परभाव है, जो कभी भी मोक्ष का कारण नहीं है। इस प्रकार तू निश्चय से जान।

जहाँ मन की पहुँच नहीं है, वचन की गति नहीं है और काया की जहाँ चेष्टा नहीं है, विकल्प का जहाँ प्रवेश नहीं है—ऐसा जो आत्मदर्शन अर्थात्

शुद्धात्मा की प्रतीति, वह निश्चय मोक्ष का कारण है; उसमें तीनों रत्न आ जाते हैं, अत: उसी को श्रेष्ठ जान; दूसरा कोई मोक्षमार्ग न मान।

देह-मन-वाणी की क्रिया का जिसमें प्रवेश नहीं है, मन के शुभाशुभ विकल्प द्वारा जो जाना नहीं जाता, ऐसा जो शुद्ध आत्मतत्त्व, उसका दर्शन-उसका ज्ञान-उसकी अनुभूति, वही एक श्रेष्ठ-उत्तम मोक्षकारण है। बीच में दूसरे विकल्प आते हैं किन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं है-वह श्रेष्ठ नहीं है।

सम्यक् रत्नत्रय की आराधना द्वारा मोक्षमार्ग में प्रवर्तन करते वीतरागी सन्त जगत को कहते हैं कि हे जीव! विश्व में निज शुद्धात्मा का दर्शन, वही एक श्रेष्ठ है, और उसके द्वारा ही मोक्षमार्ग प्राप्त होता है; उसके बिना कभी मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं होता। आत्मदर्शन से अन्य ऐसे किसी भी भेद-व्यवहार के पराश्रितभाव को मोक्षमार्ग न जानो, स्वाश्रितभावरूप आत्मदर्शन (जिसमें सम्यग्दर्शनादि आ जाते हैं), उसे ही वास्तव में मोक्षमार्ग जानना।

अरे! गुण-गुणी के भेद के विचार द्वारा भी जिसकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसा सम्यग्दर्शन अन्तर्मुख अनुभव द्वारा प्राप्त होता है, और मोक्षमार्ग उस अनुभव में समाविष्ट होता है। अपने सहज-आनन्दस्वभाव के सन्मुख होकर जहाँ निर्विकल्प अनुभवसहित सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ मोक्षमार्ग का दरवाजा खुल गया। अतीन्द्रिय आनन्दसहित ऐसा सम्यग्दर्शन-आत्मदर्शन जिसे हुआ, उसे जगत के प्रति सहज वैराग्य परिणाम होता है। पर से विमुख और अपने नित्य स्वभाव के सन्मुख ऐसा जो निर्मल परिणाम है, वही एक मोक्ष का कारण है।

सीमन्धर तीर्थंकर आदि सभी तीर्थंकर भगवन्त ऐसे मोक्षमार्ग को साधकर सर्वज्ञ परमात्मा हुए हैं; अनन्त सिद्ध भगवन्तों ने ऐसे मोक्षमार्ग को साधकर सिद्धपद प्राप्त किया है; गणधरादि सन्त ऐसे ही मोक्षमार्ग को साध रहे हैं और उन तीर्थंकरों ने, गणधरों ने और सम्यग्ज्ञानियों ने ऐसा ही एक मोक्षमार्ग बतलाया है, इसके सिवा अन्य कोई भी मोक्ष का सच्चा कारण जरा भी नहीं है।

शुभरागरूप व्यवहार में थोड़ा भी मोक्षमार्ग होगा या नहीं ? तो कहते हैं कि नहीं; अन्य तो बन्धमार्ग है, राग वह किंचित् मोक्षमार्ग नहीं है। यह जो स्वाश्रित आत्मदर्शनमय वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग, उसके सिवा दूसरा कोई मोक्षमार्ग जरा भी नहीं है; शुभराग में मोक्ष का कारणपना जरा भी नहीं है। अरे, राग तो बाह्यभाव है, उसके द्वारा अन्तरंग के अनुभव में कैसे जाया जाएगा ? बाह्यभाव अन्दर के भाव का कारण कैसे होगा ? जरा भी नहीं। ऐसी श्रद्धा तो प्रथम ही कर। इस प्रकार जो ऐसे सच्चे मोक्षमार्ग की श्रद्धा भी नहीं करता और राग को मोक्षमार्ग मानता है, शुभराग किंचित् तो मोक्षमार्ग का कारण होगा, ऐसा मानता है, तो वह आत्मदर्शन और उसकी मर्यादा को जरा भी नहीं जानता अर्थात् भगवान के कहे हुए सच्चे मोक्षमार्ग को नहीं जानता; सर्वज्ञ और वर्तमान आत्मानुभवी ज्ञानी की आज्ञा क्या है, वह नहीं जानता। उनका आदेश तो यह है कि हे जीव! स्वाश्रित सम्यग्दर्शनादिक को ही तू कारण जान, परसन्मुख किसी भी भाव को मोक्ष का कारण किंचित् न मान।

अरे! अन्तर में पूर्ण ज्ञानानन्द का भण्डार तू-उसके सन्मुख देखने पर तेरा मोक्षमार्ग है; अन्य के सामने देखने से तेरा मोक्षमार्ग नहीं है। तेरा पूर्ण पवित्रतारूपी मोक्ष—तेरा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो स्वोन्मुख परिणाम है, वह किसको होता है ? कि जिसको स्वतत्त्व का सच्चा माहात्म्य और परम रस आये उसको। स्ववस्तु की महत्ता भूलकर जो जीव परवस्तु का मूल्यांकन अधिक करता है, उसके परिणाम परोन्मुख ही रहते हैं; स्व की उत्कृष्ट महिमा भासे तो परिणाम स्वोन्मुख होते हैं और मोक्षमार्ग प्रगट होता है। इस प्रकार स्वोन्मुखता से ही मोक्षमार्ग का दरवाजा खुलता है।

गृहवास में स्थित सम्यग्दृष्टि को भी सम्यग्दर्शन द्वारा मोक्षमार्ग का फाटक खुल गया है; उसे शुद्ध स्वतत्त्व का उपादेयपना और सर्व परभावों का हेयपना है ही, इस प्रकार हेय-उपादेय तत्त्व का ज्ञान वर्तता है, और उसी ज्ञान के बल द्वारा वह मोक्षमार्ग को साध रहे हैं। अब तो उन्हें चारित्रदोषवश राग और विकल्प भूमिकानुसार आते हैं किन्तु उन्हें वे मोक्ष के साधन के

रूप में नहीं मानते, समस्त रागादि को अपने स्वभाव से दूर ही रखते हैं। ऐसे भेदविज्ञानमय श्रद्धा-ज्ञान सहित निजशुद्धात्मा का उपादेयत्व धर्मात्मा को गृहस्थपद में भी होता है। उपयोग अन्दर में लगाते ही स्वयं विशेष आनन्दमय हो जाते हैं। राग के समय भी वीतरागी समाधि की एक धारा उन्हें साथ ही साथ वर्तती है।

धर्मी को शुद्धात्मा नजदीक है, उसमें से मोक्षमार्ग आता है, और रागादि तो स्वभाव से दूर हैं, उनमें से किंचित् मोक्षमार्ग नहीं आता। शुद्धात्मा वस्तु तो स्वयं नित्य है; मैं स्वयं ही परम आनन्द का महारत्न हूँ।—ऐसी स्वसंवेदनमय प्रतीति गृहस्थ धर्मात्मा को भी होती है। उसे श्रद्धा में समीपता किसकी है ? कि—नित्यज्ञानमय शुद्धस्वभाव की समीपता है, और रागादि परभाव दूर हैं। 'यही मैं हूँ' ऐसी शुद्धता का उपादेयत्व है, और रागादि में तन्मयबुद्धि नहीं, वह उसका हेयतत्त्व है। गृहस्थ को भी ऐसे हेय-उपादेय के ज्ञान के बल द्वारा आंशिक मोक्षमार्ग होता है। भले चारित्रदशारूप विशेष मोक्षमार्ग उसे प्रगट नहीं है, किन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान तथा जघन्य स्वरूपाचरणचारित्ररूप अल्प मोक्षमार्ग तो उसे निरन्तर वर्तता है। गृहस्थदशा में ध्यान के प्रयोग द्वारा कभी-कभी राग से पृथक् होकर उपयोग को बुद्धिपूर्वक राग से अलग करके निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करता है।

मोक्षमार्ग का बड़ा हिस्सा तो मुनिवरों के पास है, अर्थात् चारित्रदशा-सहित बहुत कुछ मोक्षमार्ग मुनि को प्रगट हुआ है, गृहस्थ ज्ञानी को छोटा भाग है। भले छोटा भाग हो किन्तु उनकी जाति तो मुनिराज के मोक्षमार्ग जैसी ही है। श्रावकधर्मी को भी जघन्य अंश मोक्षमार्ग का अंश होता है।

कोई कहे कि मोक्षमार्ग तो मुनि को ही होता है और गृहस्थ श्रावक को मोक्षमार्ग जरा भी नहीं होता,—तो उसे वास्तव में मोक्षमार्ग स्वरूप की खबर ही नहीं है; न श्रावकदशा की। आव्रती गृहस्थ को भी कथंचित् मोक्षमार्ग का अंश वर्तता है।—वह भी कभी-कभी उपयोग को अन्तर में एकाग्र करके

शेष पृष्ठ 22 पर...

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी के

धारावाही प्रवचन

गतांक से आगे

छह द्रव्यों का ज्ञान अनुभव के लिये कारण है, अत: उनका विवेचन किया जाता है:-

जीवद्रव्य का स्वरूप

चेतनवन्त अनन्त गुन, परजै सकति अनन्त।
अलख अखण्डित सर्वगत, जीव दरब विरतन्त॥20॥

अर्थ:- चैतन्यरूप है, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय और अनन्त शक्ति सहित है, अमूर्तिक है, अखण्डित है, सर्वव्यापी है। यह जीवद्रव्य का स्वरूप कहा है॥20॥

काव्य- 20 पर प्रवचन

जीव किसको कहना? देह में विराजमान चैतन्य तत्त्व कैसा है? वह बतलाते हैं। भगवान-आत्मा चैतन्यरूप है, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय और अनन्त शक्तियों का भण्डार है। आत्मा को जड़रूप नहीं; अत: वह स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाला नहीं। जीव स्वयं एकरूप है परन्तु उसकी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, प्रभुता आदि अनन्त शक्तियाँ है, वे त्रिकाली गुण हैं और एक-एक में अनन्त शक्ति सामर्थ्य है। चिद्विलास में यह बात ली है। जीव द्रव्य ऐसे अनन्त गुणमय है ऐसा जाने बिना, उसका अनुभव नहीं होता।

एक जीव द्रव्य में अनन्त गुण हैं और एक-एक गुण की अनन्त पर्यायें हैं और अनन्त शक्ति है। पर्याय तो एक अंश है परन्तु उस गुण की शक्ति का सामर्थ्य अनन्त है। यहाँ तो दस-बीस लाख हो जायें तो, मानो मैं कुछ बड़ा हो गया हूँ ऐसा लगता है परन्तु भाई! यह पैसा तेरा नहीं है; तेरी अनन्त शक्ति ही तेरा वैभव है।

अज्ञानी जीव को शरीर में कैंसर आदि रोग हों, उसकी दरकार है। 'अरे! मुझे कैंसर हो गया' उसका भय है परन्तु आत्मा को, यह शरीर मैं हूँ,

राग मैं हूँ यह कैंसर और क्षयरोग लागू पड़ा है, उसकी दरकार नहीं है; उसका भय नहीं है क्योंकि अपनी जाति को भूलकर विजात को अपना माना है न! परन्तु उसमें क्षण-क्षण में उसकी मृत्यु होती है, उसका अज्ञानी को भान नहीं है।

जागती जीवती चैतन्यज्योत जो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति का सागर है; उसे स्वीकार न करके, उसे न देखकर, कृत्रिम रागादिक की तरफ देखने से उनका मान बढ़ जाता है और आत्मा का मान घट जाता है। समझ में आया ?व्यवहार से निश्चय होता है-ऐसा माननेवाले ने व्यवहार को ही मान दिया है। हे राग! तुझसे मुझे लाभ है इस प्रकार राग को मान देनेवाले ने जागती जीवती चैतन्यज्योत का अपमान किया है। अनन्त गुण के सागर का अपमान किया है।

जीव द्रव्य अनन्त गुण और शक्तिवाला है, ऐसा कहा। अब कहते हैं कि जीव द्रव्य अलख है। अलख अर्थात् वह इन्द्रियों से ज्ञात हो वैसा नहीं है, वह तो अतीन्द्रिय स्वरूप भगवान है, अखण्डित है, उसमें खण्ड-खण्ड नहीं तथा सर्वगत है अर्थात् सबको जाननेवाला है। सबमें व्यापक हुए बिना, अपने में रहकर तीन काल और तीन लोक को जाननेवाला है। ज्ञान की अपेक्षा उसका विस्तार सर्वव्यापी है अर्थात् स्वयं जगत में व्यापक नहीं होता परन्तु स्वयं अपने में रहकर सम्पूर्ण जगत को जान लेता है। भगवान ने जीव द्रव्य का ऐसा स्वरूप कहा है, उसका यहाँ वर्णन किया है।

पुद्गल द्रव्य का लक्षण

फरस-वरन-रस-गन्धमय, नरद-पास-संठान।
अनुरूपी पुद्गल दरब, नभ-प्रदेश-परवान ॥21॥

अर्थः- पुद्गल द्रव्य परमाणुरूप, आकाश के प्रदेश के बराबर, चौपड़ के पासे के आकार का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवन्त है ॥21॥

काव्य - 21 पर प्रवचन

अब, पुद्गल द्रव्य का वर्णन करते हैं-

पुद्गल द्रव्य परमाणुरूप है। परम+अणु=परमाणु। सबसे छोटे से छोटा अणु है, वह परमाणु है, वही पुद्गल द्रव्य है। यह शरीर आदि दिखता है, वह तो परमाणुओं का स्कन्ध है। परमाणु आकाश के एक प्रदेश जितना होता है। चौपड़ के पासा के समान उसका आकार होता है अर्थात् छह पासादार जैसा चौरस-बरफी के आकार जैसा होता है। पुद्गल का ऐसा स्वरूप भगवान सर्वज्ञदेव ने प्रत्यक्ष देखा है।

आत्मा अरूपी चिदानन्द भगवान है और पुद्गल तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाला है। ठण्डा, गर्म, रूखा, चिकना आदि आठ प्रकार का उसका स्पर्श होता है। काला, लाल, पीला आदि उसमें रंग होता है। खट्टा, मीठा, कड़वा आदि रस होता है। परमाणु ऐसे स्पर्श रस, वर्ण, गन्धमय होता है। गुणी से गुण भिन्न नहीं होते। जैसे-शक्कर से उसकी मिठास और सफेदपना भिन्न नहीं होते; वैसे ही परमाणु में रंग, गन्ध, स्पर्श आदि गुण अभेद हैं।

इस प्रकार स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णमय परमाणु को पुद्गल द्रव्य कहते हैं।

यहाँ नाटक समयसार में भूमिका चल रही है, उसमें जीव-पुद्गलद्रव्य का वर्णन चल रहा है।

आत्मा का निजस्वरूप चैतन्यरूप है, उसमें जानना-देखना आदि अनन्त गुण हैं, उसमें अनन्त पर्यायें हैं। अर्थात् कि द्रव्य परिणमा करता है, वह कूटस्थ नहीं; वस्तुरूप से कायम रहकर पर्यायरूप से बदला-परिणमा करता है। अधर्म टलकर धर्म हो, दु:ख टलकर सुख हो, यह सब पर्याय में होता है। ऐसी पर्याय भी एक-एक गुण में अनन्त पर्यायें हैं और शक्ति भी अनन्त है। जिसका जो स्वभाव है, उसकी शक्ति का क्या कहना ?

अलख:- आत्मा इन्द्रियों द्वारा ज्ञात हो वैसा नहीं है, वह तो अतीन्द्रिय महापदार्थ है; अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही जानने योग्य है। शरीर, इन्द्रिय, मन, विकल्प अथवा राग द्वारा अनुभव में आवे- ऐसा वह पदार्थ नहीं है।

अखण्डित:- आत्मा में अनन्त गुण होने पर भी उसमे भेद नहीं है।

आत्मा वस्तुरूप से अखण्ड एक वस्तु है। 'सर्वगत' अर्थात् एक समय में सम्पूर्ण लोकालोक को जानने के स्वभाववाला यह जीवद्रव्य है। इस जीव द्रव्य का रागरहित होकर अन्तर अनुभव करने का नाम धर्म है। जीवदया पालनी अथवा व्रतादि लेना, वह धर्म का स्वरूप नहीं है।

जैसे-यह जीव पदार्थ है, वैसे ही पुद्गल भी पदार्थ है। वह जीव से भिन्न वस्तु है। भिन्न है, अतः उससे भिन्न पड़ना है। शरीर, मन, वाणी, मकान, लक्ष्मी आदि पुद्गल हैं। उनमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और आकारादि गुण होते हैं। एक-एक पुद्गल परमाणु का आकार छह पासावाले चौपड़ के जैसा होता है, वैसा ही एक-एक प्रदेश का आकार है। यह सब सर्वज्ञ से सिद्ध हुई बात है, कल्पना नहीं। जगत के पदार्थों का ऐसा स्वभाव है, वह सर्वज्ञ के एक समय के ज्ञान में आया है और बिना इच्छा ही निकलनेवाली सर्वज्ञ भगवान की ॐकार ध्वनि में यह स्वरूप जगत के समक्ष प्रसिद्ध हुआ है।

चौदह ब्रह्मण्ड में एक धर्म द्रव्य है, जो गति करते जीव-पुद्गलों को गति में निमित्त होता है। वह भी अरूपी एक वस्तु है। उसका वर्णन अब करते हैं।

धर्म द्रव्य का लक्षण

जैसैं सलिल समूहमैं, करै मीन गति-कर्म।
तैसैं पुद्गल जीव कौं, चलनसहाई धर्म॥22॥

अर्थः- जिस प्रकार मछली की गमनक्रिया में पानी सहायक होता है उसी प्रकार जीव पुद्गल की गति में सहकारी धर्म द्रव्य है॥22॥

काव्य - 22 पर प्रवचन

जैसे - मछली पानी में अपनी गति का कार्य करती है, उसमें उसको पानी निमित्त है; वैसे ही जीव और पुद्गल गति करते हैं, उसमें धर्म द्रव्य निमित्त कारण है। जीव पुद्गल अपने उपादान से गति करते हैं, तब धर्म द्रव्य निमित्त कारण होता है। जैसे - पानी मछली को चलाता नहीं है परन्तु मछली स्वयं गमन करे तो पानी निमित्त कहलाता है; वैसे ही धर्म द्रव्य-जीव, पुद्गल

को चलाता नहीं है परन्तु वे अपने से गति कर्म करें तब धर्म द्रव्य को उदासीन निमित्त कहते हैं, प्रेरक निमित्त नहीं।

जीव-पुद्गल को गति करने में धर्म द्रव्य सहकारी कारण है अर्थात् वह साथ है परन्तु उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वह गति करा देता है। जैसे-मछली गति करे, तब पानी वहाँ होता है परन्तु पानी मछली को गति करा नहीं देता; वैसे ही धर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोक में व्यापक है। वह जीव-पुद्गल की गति के समय उपस्थित है परन्तु उन्हें गति नहीं करा देता। दो द्रव्यों की स्वतन्त्रता तो प्रसिद्ध है परन्तु लोगों को खबर नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य नहीं कर सकता, मात्र सहकारीरूप से साथ में होता है॥22॥

अधर्म द्रव्य का लक्षण

ज्यौं पंथी ग्रीषमसमै, बैठै छायामाँहि।
त्यौं अधर्म की भूमिमैं, जड़ चेतन ठहराँहि॥23॥

अर्थः- जिस प्रकार ग्रीष्म काल में पथिक छाया का निमित्त पाकर बैठते हैं, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य जीव-पुद्गल की स्थिति में निमित्त-कारण हैं॥23॥

काव्य- 23 पर प्रवचन

अब, अधर्म द्रव्य का लक्षण कहते हैं -

ज्येष्ठ माह की धूप में यात्री रास्ते में चला जा रहा हो, वह वृक्ष की छाया आने पर वहाँ बैठ जाता है। छाया उससे बैठने को नहीं कहती परन्तु पंथी-यात्री स्वयं बैठता है। वैसे ही अधर्मास्तिकाय जीव-पुद्गल को स्थिर नहीं कर देता परन्तु जड़-चैतन्य स्वयं कर्त्ता होकर गतिपूर्वक स्थिति करते हैं, तब अधर्मास्तिकाय को निमित्त कारण, सहकारी कारण, उपस्थित द्रव्य अथवा उदासीन कारण कहने में आता है।

शब्द देखा! बैठे छाया माँहि-छाया यात्री को कहती नहीं कि तू बैठ! परन्तु मुसाफिर छाया में बैठे, तब छाया को निमित्त कहते हैं। वैसे ही जड़ (पुद्गल) चैतन्य ठहरें, (स्थिर हों।) तब अधर्मास्तिकाय को निमित्त कहते हैं।

जैसे - जड़ और चैतन्यद्रव्य हैं वैसे ही आकाश भी एक द्रव्य है, जो अरूपी सर्वव्यापक पदार्थ है। खाली..खाली..खाली जगह वह आकाश है। दशों दिशाओं में कहीं उसका अन्त नहीं है। उस आकाशद्रव्य का स्वरूप यहाँ कहते हैं ॥23 ॥

आकाश द्रव्य का लक्षण

संतत जाके उदरमैं, सकल पदारथवास।
जो भाजन सब जगत कौ, सोई दरब अकास ॥24 ॥

अर्थ:- जिसके पेट में सदैव सम्पूर्ण पदार्थ निवास करते हैं, जो सम्पूर्ण द्रव्यों को पात्र के समान आधारभूत है; वही आकाश द्रव्य है ॥24 ॥

नोट:- अवगाहना आकाश का परम धर्म है, सो आकाश द्रव्य अन्य द्रव्यों को अवकाश दिये हुए है और अपने को भी अवकाश दिये हुए है। जैसे: -ज्ञान जीव का परम धर्म है, सो जीव अन्य द्रव्यों को जानता है और अपने को भी जानता है।

काव्य - 24 पर प्रवचन

जिसके पेट में अर्थात् जिसकी जगह में सभी द्रव्य सदा रहते हैं, वह आकाश द्रव्य है। आकाश पहले था और फिर दूसरे द्रव्य हुए और आकाश में रहे- ऐसा नहीं है। पाँचों द्रव्य निरन्तर आकाश में बसते हैं।

श्रोता:- आकाश और पाँचों द्रव्यों में आधार-आधेय सम्बन्ध होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री:- व्यवहार से आधार-आधेय सम्बन्ध है, अन्यथा किसको किसका आधार ? स्वयं ही अपना आधार है। आकाश को किसका आधार है ? स्वयं ही आधार है। वैसे ही जड़ और चेतन अपने अवगाहन में ही रहते है, उन्हें आकाश का अवगाहन का निमित्त है; अत: कहा कि जैसे पात्र में वस्तु रहती है, वैसे ही आकाश जीव पुद्गलादि के रहने का पात्र है।

काल द्रव्य का लक्षण

जो नवकरि जीरन करै, सकल वस्तुथिति ठांनि।
परावर्त वर्तन धरै, काल दरब सो जांनि ॥25 ॥

अर्थ:- जो वस्तु का नाश न करके सम्पूर्ण पदार्थों की नवीन हालतों के

प्रगट होने और पूर्व पर्यायों के लय होने में निमित्तकारण है, ऐसा वर्तना लक्षण का धारक काल द्रव्य है ॥25 ॥

नोट:- काल द्रव्य का परम धर्म वर्तना है, सो वह अन्य द्रव्यों की पर्यायें का वर्तन करता है और अपनी भी पर्यायें पलटता है।

काव्य- 25 पर प्रवचन

जगत में काल नामक सूक्ष्म अरूपी अणु (कालाणु) है। जड़ और चेतन में रूपान्तर होता है उसमें वे निमित्त बनते हैं। द्रव्य स्वयं परिवर्तन (बदलने) का उपादान है, परन्तु उसमें निमित्त कालद्रव्य है।

जड़ और चैतन्य स्वयं कर्त्ता होकर नई पर्याय को उत्पन्न करते हैं और पुरानी पर्याय का व्यय करते हैं, उसमें कालद्रव्य उदासीन कारण होता है। जगत के पदार्थों का ऐसा स्वभाव है।

कालद्रव्य का परमधर्म वर्तना है। इससे वह अन्य द्रव्यों की वर्तना में निमित्त है और अपनी पर्याय को भी पलटता है। कालद्रव्य के असंख्य अणु (कालाणु) सम्पूर्ण लोकाकाश में स्थित हैं। वह अरूपी और सूक्ष्म द्रव्य है। अनन्त गुणों का पिण्ड है और प्रति समय अपनी पर्याय को पलटता है और अन्य द्रव्यों की पर्याय के परिवर्तन में निमित्त है।

ऐसा छह द्रव्यों का स्वरूप है। उसे जानने का जीव का स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को जानकर, स्वरूप में दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। द्रव्य के ऐसे स्वभाव की खबर न हो और आत्मा का अनुभव हो जाये ऐसा नहीं बनता; क्योंकि जानने का जीव का स्वभाव है तथा छह द्रव्य होने पर भी न माने तो उसका ज्ञान भी मिथ्या सिद्ध होता है। *क्रमशः*

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन प्रवेश प्रारम्भ

स्वर्णिम अवसर जो भी छात्र कक्षा आठवीं में प्रवेश लेना चाहते हैं, वे शीघ्र ही मङ्गलायतन से प्रवेश फार्म मंगा सकते हैं। मङ्गलायतन की वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता

— विश्व के ज्ञेय पदार्थों का स्वभाव —

गतांक से आगे

द्रव्य का एक वर्तमान प्रवर्तित परिणाम अपने से उत्पादरूप है, अपने पहले के परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप है और अखण्ड प्रवाह में वह ध्रौव्य है।—इस प्रकार परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है और उस परिणाम में द्रव्य वर्तता है, इसलिए द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने से, उस परिणाम में वर्तनेवाले परिणामी के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध हो जाते हैं, इसलिए कहा है कि द्रव्य को त्रिलक्षण अनुमोदना। अनुमोदना अर्थात् रुचिपूर्वक मानना, सानन्द सम्मत करना।

यदि समय-समय के परिणाम की यह बात समझ ले तो पर में खटपट करने का अहंकार न रहे और अकेले रागादि परिणामों पर भी दृष्टि न रहे, किन्तु परिणामी ऐसे त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि हो जाए और द्रव्यदृष्टि होने से आनन्द का अनुभव हुए बिना न रहे। इसलिए कहा है कि.... 'सानन्द सम्मत करना।'

जिस प्रकार त्रिकाली सत् में जो चैतन्य है, वह चैतन्य ही रहता है और जड़ है, वह जड़ ही रहता है; चैतन्य मिटकर जड़ नहीं होता और न जड़ मिटकर चैतन्य होता है। उसी प्रकार एक समय के सत् में भी—जो परिणाम जिस समय में सत् है, वह परिणाम उसी समय होता है- आगे-पीछे नहीं होता। जिस प्रकार त्रिकाली सत् है, उसी प्रकार वर्तमान भी सत् है। जिस प्रकार त्रिकाली सत् पलटकर अन्यरूप नहीं हो जाता, उसी प्रकार वर्तमान सत् पलटकर भी भूत या भविष्यरूप नहीं हो जाता। तीनों काल के समय-समय के वर्तमान परिणाम अपना स्वसमय (स्व-काल) छोड़कर पहले या

पीछे के समय नहीं होते। जितने तीन काल के समय हैं, उतने ही द्रव्य के परिणाम हैं; उनमें जिस समय का जो वर्तमान परिणाम है, वह परिणाम अपना वर्तमानपना छोड़कर भूत या भविष्य में नहीं होता। बस, प्रत्येक परिणाम अपने-अपने काल में वर्तमान सत् है। उस सत् को कोई बदल नहीं सकता। सत् को बदलना माने, वह मिथ्यादृष्टि है; उसे ज्ञातास्वभाव की प्रतीति नहीं है। जिस प्रकार चेतन को बदलकर जड़ नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार द्रव्य के त्रिकाली प्रवाह में उस-उस समय के वर्तमान परिणाम को आगे-पीछे नहीं किया जा सकता। अहो! लोगों को अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं है, इसलिए ज्ञेयों के ऐसे व्यवस्थित स्वभाव की प्रतीति नहीं बैठती।

जिस प्रकार वस्तु अनादि-अनन्त है, उसी प्रकार उसका प्रत्येक समय का वर्तमान भी प्रवाहरूप से अनादि-अनन्त है। वस्तु और वस्तु का वर्तमान —वह पहले-पीछे नहीं है। वस्तु का वर्तमान कब नहीं होता? कभी भी वर्तमान बिना वस्तु नहीं होती। दोनों ऐसे के ऐसे अनादि-अनन्त हैं। तीनों काल में से एक भी समय के वर्तमान को निकाल दें तो त्रिकाली वस्तु ही सिद्ध नहीं हो सकती। तीनों काल के वर्तमान का पिण्ड, सो सत् द्रव्य है, और उन तीनों काल का प्रत्येक वर्तमान परिणाम अपने अवसर में सत् है; वह अपने से उत्पादरूप है, पूर्व की अपेक्षा से व्ययरूप और अखण्ड वस्तु के वर्तमानरूप से ध्रौव्यरूप है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम, सो सत् है और वह द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे सत् को कौन बदल सकता है? सत् को जैसे का तैसा जान सकता है, किन्तु उसे कोई बदल नहीं सकता।

वस्तु के द्रव्य-गुण-पर्याय का जैसा स्वभाव है, वैसा ज्ञान जानता है। अंश को अंशरूप से जानता है और त्रिकाली को त्रिकालीरूप से जानता है—ऐसा स्वभाव जानने पर अकेले अंश की रुचि न रहने से, त्रिकाली

स्वभाव की रुचि की ओर श्रद्धा ढल जाती है। अंश को अंशरूप से और अंशी को अंशीरूप से श्रद्धा में लेने पर श्रद्धा का सारा बल अंश पर से हटकर त्रिकाली द्रव्य-गुण की ओर ढल जाता है, यही सम्यग्दर्शन है।

द्रव्य, गुण और पर्याय—यह तीनों स्वज्ञेय हैं। एक समय में द्रव्य-गुण-पर्याय का पिण्ड, वह सम्पूर्ण स्वज्ञेय है। उसमें पर्याय एक समयपर्यन्त की है—ऐसा जानने से उस पर एक समयपर्यन्त का ही बल रहा; और द्रव्य भी त्रिकाली जानने पर उस पर त्रिकाली बल आया, इसलिए उसकी मुख्यता हुई और उसकी रुचि में श्रद्धा का बल ढ़ल गया। इस प्रकार स्वज्ञेय को जानने से सम्यक्त्व आ जाता है। इसलिए इस ज्ञेय-अधिकार का दूसरा नाम सम्यक्त्व -अधिकार भी है।

स्वज्ञेय, परज्ञेय से बिलकुल भिन्न है। यहाँ राग भी स्वज्ञेय में आता है। समयसार में द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से कथन है, वहाँ स्वभावदृष्टि में राग की गौणता हो जाती है, इसलिए वहाँ तो 'राग, आत्मा में होता ही नहीं; राग जड़ के साथ तादात्म्यवाला है'—ऐसा कहा जाता है। वहाँ दृष्टि अपेक्षा से राग को पर में डाल दिया और द्रव्य की दृष्टि करायी। और यहाँ, इस प्रवचनसार में ज्ञान-अपेक्षा से कथन है, इसलिए सम्पूर्ण स्वज्ञेय बताने के लिए राग को भी स्वज्ञेय में लिया है। दृष्टि-अपेक्षा से राग पर में जाता है और ज्ञान-अपेक्षा से वह स्वज्ञेय में आता है; परन्तु राग में ही स्वज्ञेय पूरा नहीं हो जाता। रागरहित द्रव्य-गुण-स्वभाव भी स्वज्ञेय है। इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को स्वज्ञेयरूप से जाना, वहाँ राग में से एकत्वबुद्धि छूटकर रुचि का बल द्रव्य की ओर ढल गया। अकेले राग को सम्पूर्ण तत्त्व स्वीकार करने से स्वज्ञेय सम्पूर्ण प्रतीति में नहीं आता था और द्रव्य-गुण-पर्यायरूप सम्पूर्ण स्वज्ञेय की प्रतीति होने से उस प्रतीति का बल त्रिकाली की ओर बढ़ जाता है, इसलिए त्रिकाली की मुख्यता होकर उस ओर रुचि का बल ढ़लता है। इस प्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है। *क्रमशः*

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक चार

आत्मार्थी का पहला कर्तव्य—5

भूतार्थस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन

अभूतार्थनय से देखने पर नवतत्त्व दिखायी देते हैं, किन्तु भूतार्थनय से तो एक आत्मा ही शुद्ध ज्ञायकरूप से प्रकाशमान है; शुद्धनय से स्थापित एक आत्मा की ही अनुभूति, सो सम्यग्दर्शन है। 'अनुभूति' तो यद्यपि ज्ञान की स्वसन्मुख पर्याय है, किन्तु उस अनुभूति के साथ सम्यग्दर्शन नियम से होता है, इसलिए यहाँ अनुभूति को ही सम्यग्दर्शन कह दिया है।

व्यवहार में नवतत्त्व थे, उनके लक्षण जीव, अजीवादि नव थे, और इस शुद्धनय के विषय में एकरूप आत्मा ही है, उसमें नव की प्रसिद्धि नहीं है, किन्तु चैतन्य का एकत्व ही प्रसिद्ध है। ऐसे शुद्ध आत्मा की अनुभूति का लक्षण आत्मख्याति है-आत्मा की प्रसिद्धि है। जीव-अजीव के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को लक्ष्य में लेकर देखने से नवतत्त्व हैं अवश्य, उन्हें व्यवहारनय स्थापित करता है, किन्तु भूतार्थनय (शुद्धनय) तो एक अभेद आत्मा की ही स्थापना करता है। जीव-अजीव के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को भी वह स्वीकार नहीं करता। आत्मा त्रिकाल एकरूप सिद्ध जैसी मूर्ति है, ऐसे आत्मा की श्रद्धा करना, वह परमार्थ सम्यग्दर्शन है, उसमें भगवान आत्मा की प्रसिद्धि होती है।

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करने में आत्मा की प्रसिद्धि नहीं होती, इसलिए देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा वास्तव में सम्यग्दर्शन नहीं है। अभी सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भी जिसे पहिचान नहीं है, नवतत्त्व की श्रद्धा की भी खबर नहीं है, उसे तो व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है, उसकी तो यहाँ बात नहीं है। परन्तु कोई जीव नवतत्त्वों को जानने में ही रुक जाए और नव का लक्ष्य छोड़कर एक आत्मा की ओर सन्मुख न हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। नवतत्त्व की श्रद्धा बीच में आती है, उसे व्यवहारश्रद्धा कब कहा जाता है ? - यदि नव के विकल्प का आश्रय छोड़कर भूतार्थ के आश्रय से आत्मा की

ख्याति करे- आत्मा की प्रसिद्धि करे - आत्मा की अनुभूति करे तो नवतत्त्व की श्रद्धा को व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। अभेद आत्मा की श्रद्धा करके परमार्थश्रद्धा प्रगट करे तो नवतत्त्व की श्रद्धा को व्यवहारश्रद्धा का उपचार आता है, नहीं तो निश्चय के बिना व्यवहार किसका ? निश्चय के बिना व्यवहार तो व्यवहाराभास है।

श्री आचार्यदेव ने इस टीका का नाम 'आत्मख्याति' रखा है। आत्मख्याति अर्थात् आत्मा की प्रसिद्धि। एकरूप शुद्ध आत्मा की प्रसिद्धि। एकरूप शुद्ध आत्मा की प्रसिद्धि करना इस टीका का मुख्य प्रयोजन है, नवतत्त्वों को बतलाने का मुख्य प्रयोजन नहीं है। इस ग्रन्थ में नवतत्त्वों का वर्णन आयेगा अवश्य, किन्तु उसमें मुख्यता तो एकरूप शुद्ध आत्मा की ही बतलाना है। इस प्रकार आचार्यदेव के कथन में शुद्ध आत्मा की मुख्यता है, इसलिए श्रोताओं को भी अन्तर में एकरूप शुद्ध आत्मा को लक्ष्य में लेने की मुख्यता रखकर श्रवण करना चाहिए। बीच में विकल्प और भेद का वर्णन आये, उसकी मुख्यता करके न रुककर शुद्ध आत्मा को ही मुख्य करके लक्ष्य में लेना चाहिए। नवतत्त्वों को जानने का प्रयोजन तो आत्मोन्मुख होना ही है।

नवतत्त्व में जीव को वास्तव में कब माना कहा जाता है ? नवतत्त्व के भेद की उन्मुखता छोड़कर एकरूप जीवस्वभाव की ओर उन्मुख हो तो जीव को माना कहा जाता है ? आस्रव-बन्धतत्त्व को कब माना कहा जाता है ? उनके अभावरूप आत्मस्वभाव को माने तो आस्रव-बन्ध को माना कहा जाता है। संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व को कब माना कहा जाता है ? स्वभावोन्मुख होकर अंशत: संवर-निर्जरा प्रगट करे तो संवरादि को माना कहा जाता है। इस प्रकार नवतत्त्वों को जानकर यदि अभेद आत्मा की ओर उन्मुख हो, तभी नवतत्त्वों को वास्तव में जाना कहा जाता है, यदि अभेद आत्मा की ओर उन्मुख न हो और नवतत्त्वों के विकल्प में ही रुक जाए तो नवतत्त्वों को यथार्थरूप से जाना नहीं कहलाता।

नवतत्त्व की श्रद्धा भी अभेद आत्मा के अनुभव में काम नहीं आती, प्रथम नवतत्त्व सम्बन्धी विकल्प होता है, किन्तु अभेद आत्मा का अनुभव करने के विकल्प दूर हो जाता है। नवतत्त्वों का ज्ञान रह जाता है, किन्तु एकरूप आत्मा से अनुभव के समय नवतत्त्वों के विकल्प नहीं होते। ऐसा अनुभव प्रगट हो, तब चौथा गुणस्थान अर्थात् धर्म की प्रथम सीढ़ी कहलाती है। इसके अतिरिक्त बाह्य क्रिया से या पुण्य से धर्म का प्रारम्भ नहीं होता।

यहाँ बाह्य क्रिया की तो बात नहीं है, अन्तर में नवतत्त्वों के विचार भी अभेदस्वरूप के अन्तर अनुभव में ढलने में कार्यकारी नहीं होते। अभेद आत्मा में ढलना, वह नवतत्त्वों को जानने का प्रयोजन है, इसलिए यदि विकल्प तोड़कर आत्मा में एकाग्र हो तो नवतत्त्वों को जाना कहा जाता है। बन्धतत्त्व को जाना कब कहा जाता है ? उससे पृथक् हो तब। 'यह बन्ध है, यह बन्ध है' – ऐसा गोखता रहे, किन्तु यदि बन्धन से मुक्त न हो तो यथार्थरूप से बन्ध को जाना नहीं कहा जाता। और नवतत्त्व को जाना कब कहा जाता है ? यदि नवतत्त्वों के सन्मुख ही देखता रहे तो नवतत्त्वों का यथार्थ ज्ञान न हो और आत्मा का ज्ञान भी न हो। जब आत्मस्वभाव की ओर ढले, तभी नवतत्त्वों का यथार्थ ज्ञान हुआ कहलाता है, क्योंकि आत्मोन्मुख हो, उस ज्ञान में ही स्व-पर को जानने का सामर्थ्य होता है। अजीव के सन्मुख देखते रहने से अजीव का सच्चा ज्ञान नहीं होता, किन्तु जीव और अजीव भिन्न हैं – ऐसा समझकर अभेद चैतन्यमूर्ति शुद्ध आत्मा की ओर ढलने से स्व-परप्रकाशक ज्ञान विकसित होता है, वह ज्ञान अजीवादि को भी जानता है। ज्ञान तो आत्मा का है, ज्ञान कहीं नवतत्त्व के विकल्प का नहीं है, विकल्प से तो ज्ञान पृथक् है। ज्ञान तो आत्मा का होने पर भी वह ज्ञान यदि आत्मोन्मुख होकर आत्मा के साथ एकता न करे और राग के साथ एकता करे तो वह ज्ञान स्व-पर को यथार्थ नहीं जान सकता अर्थात् वह मिथ्याज्ञान है, अधर्म है। राग के आश्रय बिना ज्ञायक का अनुभव करना, उसे आत्मख्याति कहते हैं और वह सम्यग्दर्शन है, वहाँ से धर्म का प्रारम्भ

होता है। यहाँ दृष्टि में परिपूर्ण आत्मा का स्वीकार हुआ है, तथापि उसके पश्चात् अभी वीतरागता करने का कार्य शेष रह जाता है।

चौथे गुणस्थान में सम्यक् आत्मभान होने से दृष्टि में पूर्ण स्वरूप आ गया, इसलिए श्रद्धा से तो कृतकृत्यता हो गयी, किन्तु अभी आत्मा का केवलज्ञानरूप से विकास नहीं हुआ है, वीतरागता भी नहीं हुई है। मैं त्रिकाल चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य हूँ, अजीवतत्त्व मुझसे भिन्न हैं और अन्य जो सात तत्त्व हैं, वे क्षणिक हैं, इस प्रकार नवतत्त्व के भेद का विकल्प धर्मी को भी आता है, किन्तु धर्मी को उस विकल्प में एकताबुद्धि नहीं है, इसलिए विकल्प की मुख्यता नहीं है, किन्तु अभेद चैतन्य की ही मुख्यता है और आत्मा में एकाग्र होकर वीतराग होने से वैसे विकल्प होते ही नहीं। *क्रमशः*

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक 7

....पृष्ठ 8 का शेष

निर्विकल्प स्वानुभव के महानन्द का स्वाद लेता है। मुनि को तो चैतन्यस्वरूप में बहुत लीनता है। मुनि बड़े मोक्षमार्गी है और गृहस्थ सम्यग्दृष्टि छोटा मोक्षमार्गी है।—किन्तु मोक्षमार्ग तो दोनों को है; दोनों मोक्ष के साधक हैं।

अपने शुद्ध आत्मा का परम मूल्य भासित हो तो उसमें उपादेयबुद्धि होती है, उसके सन्मुख परिणति होती है और मोक्षमार्ग प्रगट होता है, किन्तु उसके पूर्व उसकी प्राप्ति के लिये ज्ञानी के समागम में आने की तीव्र जिज्ञासा जागनी चाहिए। धर्मजिज्ञासु जीव को राग की रुचि, राग का रस; राग करनेयोग्य है—ऐसी भावना छूट जाती है और शुद्धात्मा का रस बहुत बढ़ जाता है।

पश्चात् अन्तर्मुख परिणाम में शुद्धात्मा को साक्षात् उपादेय करने पर परम आनन्दसहित मोक्षमार्ग खुल जाता है। यह मोक्षमार्ग का दरवाजा खोलने की रीत है। *आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 24, अंक - 1*

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यवर
श्री जिनसेन (द्वितीय)

राजा अमोघवर्ष का काल (ई.स. 815-877) विद्वानों के सन्मान का सुन्दर काल था। ऐसे सुन्दर काल में राजा अमोघवर्ष जिनके बड़े भक्त थे, ऐसे मूलसंघ के पंचस्तूपान्वयी आचार्यदेव जिनसेनाचार्य (द्वितीय), निज आत्मानुभव की प्रचुरधारा में रहते-रहते साहित्य-गगन के भास्कर समान निरन्तर प्रकाशित हैं।

दिगम्बर मुनिराज पक्षियों की भाँति अनियतवासी होते हैं। अत: उनका कोई नियत स्थान तो नहीं होता तथा वे गृहवास निरत वनवासी होने से उनके गृहवास-जीवन के बारे में भी अक्सर जानने नहीं मिलता। उसमें भी विशेष तौर पर आचार्यदेव जिनसेन (द्वितीय) के बारे में तो जो [1]आजन्म दिगम्बर थे—अत: उनके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध होना मुमकिन नहीं।

फिर भी आपके परदादागुरु व दादागुरु क्रमश: आचार्य चन्द्रसेन तथा आचार्य आर्यनन्दी थे व आचार्य वीरसेन स्वामी के आप शिष्य थे। बुद्धिमान आचार्य दशरथगुरु आपके सधर्मा बन्धु गुरुभाई थे। आपने आदिपुराण में एक अन्य गुरुभाई आचार्य जयसेन (चतुर्थ/पंचम) का भी स्मरण किया है। आपके शिष्य भावलिंग सह कवित्व आदि गुणोंयुक्त जिनशासन के ज्ञाता गुणभद्राचार्यदेव थे। भगवान गुणभद्रस्वामी को आप पर बड़ी भारी श्रद्धा व भक्ति थी।

आचार्य भगवान जिनसेनस्वामी (द्वितीय) का चित्रकूट (चित्तौड़), बंकापुर (जिला-धारवाड़) व वटग्राम (वड़ोदरा) से काफी सम्बन्ध रहा

---

(1) भगवान आचार्य जिनसेन (द्वितीय) बचपन से ही आचार्य वीरसेन गुरु के साथ-साथ जंगल में चले जाया करते थे। तत्पश्चात् उन्होंने कर्ण संस्कार पूर्व ही दीक्षा धारण कर दिगम्बर मुनिराज हो गये थे। अत: आपने इस भव में कपड़े पहने ही नहीं। अत: आप आजन्म दिगम्बर कहलाये।

है। आनतेन्द्र (ज्ञानेन्द्र) कि जो अमोघवर्ष का सामन्त होने का अनुमान है, उसने पावागढ़ आदि में अनेक मन्दिर बनवाये थे। उन्हीं मन्दिरों में से एक मन्दिर में धवला टीका रची गयी थी, ऐसा भी कुछ इतिहासकारों का अनुमान है। इन सबसे यह ज्ञात होता है कि आप अमोघवर्ष के विस्तृत राज्य में अत्यन्त सम्मानित होने से आपका जन्मस्थान महाराष्ट्र और कर्णाटक की सीमाभूमि भी अनुमानित की जाती है।

आपके व्यक्तित्व के बारे में शिलालेख भी उपलब्ध हैं, जो आपके काल में आपकी धवलकीर्ति की ध्वजा फहराते हैं। बालब्रह्मचारी ऐसे आपने कठोर ब्रह्मचर्य की साधना की थी। अत: जिससे वाग्देवी आप पर अत्यन्त प्रसन्न थी।

आपका शरीर कृश था, आकृति भी भव्य और रम्य नहीं थी। इस भांति बाह्य व्यक्तित्व के मनोरम न होने पर भी, आत्मज्ञान की प्रचुरता से तपश्चरण, ज्ञानाराधन एवं कुशाग्र आराधक बुद्धि के कारण आपका अन्तरंग व्यक्तित्व बहुत ही भव्य था। आप ज्ञान व अध्यात्म के अवतार थे। आपका जन्म किस जाति-कुल को प्राप्त हुआ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

आप काव्य, व्याकरण, नाटक, दर्शन, अलंकार, आचार, कर्मसिद्धान्त प्रभृति आदि अनेक गहन विषयों के विद्वान थे। आपकी केवल तीन ही रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'वर्धमानचरित' भी आपकी ही रचना होने की सूचना प्राप्त होती है, पर यह कृति अभी तक देखने में नहीं आयी है। आपकी निम्न तीन रचनाएँ हैं व उनका रचनाक्रम निम्नानुसार है।

1. पार्श्वाभ्युदय, 2. जयधवला टीका, 3. आदिपुराण (सर्ग-42 तक)।

इतिहासकारोंनुसार सर्व प्रथम पार्श्वाभ्युदय लिखने के पश्चात् अपने गुरु वीरसेनस्वामीकृत जयधवला टीका पूर्ण करने के बाद अन्त समय में आपने आदिपुराण की रचना की हो, जिससे वह अपूर्ण रही और उसे आपके शिष्य आचार्य गुणभद्रस्वामी ने पूर्ण की।

(1) यह एक पार्श्वप्रभु के दीक्षा पश्चात् कमठ द्वारा हुए उपसर्ग के समय, पार्श्वप्रभु के आत्मध्यान को दर्शाता सुन्दरकाव्य है। आपका पार्श्वाभ्युदय कालिदास के 'मेघदूत' की समस्यापूर्ति है। इसमें आपने 'मेघदूत' के कहीं एक और दो पदों को लेकर रचना की है। इस रचना में सारा मेघदूत समाविष्ट होने पर भी जहाँ 'मेघदूत' एक शृंगाररस से ओतप्रोत है, वहीं यह रचना आपने शान्तरस में परिवर्तित कर दी है। साहित्यिक दृष्टि से यह काव्य बहुत सुन्दर व काव्यगुणों से मण्डित है।

आचार्य जिनसेन के कथनानुसार आपने जयधवला के पूर्व में पार्श्वभ्युदय ग्रन्थ की रचना पूर्ण कर दी थी। जिससे विद्वानों के मतानुसार पार्श्वाभ्युदय ग्रन्थ की रचना आपने मात्र करीब २० वर्ष की उम्र में ही पूर्ण की थी।

(2) 40,000 श्लोक प्रमाण जयधवला टीका पूर्ण की जो, कि आठ कर्मों में से मात्र मोहनीयकर्म की ही विस्तृत विवेचना है, व उसमें मोह के नाश का विस्तृत उपाय बताया है। यह टीका यद्यपि आचार्य वीरसेनस्वामी द्वारा रची गयी टीका का बाकी रहा बहुअंश भाग है, जो आपके द्वारा पूर्ण हुआ है। इस टीका के अभ्यास से पाठक आपके द्वारा प्ररूपित कर्म-सिद्धान्त की महिमा से नत-मस्तक हुए बिना नहीं रहता। इसकी भाषा-शैली अत्यन्त सुगम है।

(3) आदिपुराण में भगवान आदिनाथ का जीवन-चित्रण इतना विस्तृत व सुन्दर है कि पाठक रसिकता से इसे पढ़ा ही करे व इसे पढ़ते-पढ़ते किसी भी स्थल में अघाते नहीं हैं।

आपका काल ई.स. 818-878के आसपास होना इतिहासविद मानते हैं। आपका आयुष्य करीब 90-95 वर्ष का हो ऐसा अनुमान है।

जयधवला टीका (पूर्ण) व आदिपुराण (आद्य भाग) के रचयिता आचार्य जिसेन (द्वितीय) भगवन्त को कोटि कोटि वन्दन।

प्रेरक-प्रसंग

हिंसक बना अहिंसक

गणेशप्रसादजी वर्णी बरुआसागर में मूलचन्द्रजी के मकान में रहते थे। पास में कहार लोगों का मोहल्ला था। एक दिन रात्रि में ओलों की वर्षा हुई, इतनी विकट कि मकानों के खप्पर फूट गए। हम लोग रजाई आदि को ओढ़कर किसी तरह ओलों के कष्ट से बचे। पड़ोस में जो कहार थे, वे सब राम-राम कहकर अपनी प्रार्थना कर रहे थे। वे कह रहे थे कि—

'हे भगवान! इस कष्ट से रक्षा कीजिए, आपत्ति काल में आपके सिवाय कोई शक्ति नहीं, जो हमें कष्ट से बचा सके।' उनमें एक दस वर्ष की लड़की भी थी। वह अपने माता-पिता से कहती है कि 'तुम लोग व्यर्थ ही राम-राम रट रहे हो, यदि कोई राम होता तो इस आपत्ति काल में हमारी रक्षा न करता।' यदि तुम इन सब आपत्तियों से बचना चाहते हो तो एक काम करो। देखो तुम प्रतिदिन सैकड़ों मछलियों को मारकर अपनी आजीविका करते हो। जैसी हमारी जान, वैसी ही अन्य जीवों की भी है। यदि तुम्हें कोई सुई चुभा देता है तो कितना दु:ख होता है। जब तुम मछली की जान लेते हो, तब उसे जो दु:ख होता है, वही जानती होगी। अत: मैं यही भिक्षा माँगती हूँ कि चाहे भिक्षा से पेट भर लो, परन्तु मछली मारकर पेट मत भरो। लड़की की ज्ञान भरी बातें सुनकर पिता एकदम चुप रह गया और कुछ देर बाद उससे पूछता है कि बेटी! तुझे इतना ज्ञान कहाँ से आया? वह बोली कि मैं पढ़ी-लिखी तो हूँ नहीं, परन्तु बाईजी के पास जो पण्डितजी हैं, वे प्रतिदिन शास्त्र वाँचते हैं। एक दिन वाँचते समय उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं। अपने-अपने पुण्य-पाप के आधीन सब प्राणी हैं। यह बात आज मुझे और भी जँच गई। कोई बचानेवाला होता तो इस आपत्ति से न बचाता?

पिता ने पुत्री की बातों का बहुत आदर किया और कहा कि 'बेटी! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं और जो यह मछलियों के पकड़ने का जाल है, उसे मैं

अभी तुम्हारे सामने नष्ट करता हूँ।' इस तरह उसने बातचीत के बाद उस जाल को जला दिया और स्त्री-पुरुष ने प्रतिज्ञा की कि अब आजन्म हिंसा न करेंगे। यह कथा हम और बाईजी सुन रहे थे। बहुत ही प्रसन्नता हुई। इसके बाद ओला पड़ना बन्द हुआ। प्रातः काल जब हम मन्दिरजी पहुँचे, तब आठ बजे वे तीनों जीव आये और उत्साह से कहने लगे कि हम आज से हिंसा न करेंगे। मैंने प्रश्न किया—क्यों? उत्तर में उसने रात्रि की राम-कहानी पूरी सुनाई, जिसे सुनकर चित्त में अत्यन्त हर्ष हुआ।

शिक्षा- कोई भी प्राणी दुःखी होना तथा मरना नहीं चाहता; अतः किसी भी प्राणी को मारने-सताने से बचना चाहिए। हिंसा महापाप है।

साभार : बोध कथायें

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
इस वर्ष 'मोक्षमार्गप्रकाशक' महोत्सव

तीर्थधाम मङ्गलायतन ने पण्डित टोडरमलजी के 300 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में 'मोक्षमार्गप्रकाशक वर्ष' मनाने का निर्णय लिया है। इसी शृंखला में—

- मूल प्रति से मिलान करके मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ छपाया।
- मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर प्रारम्भ से स्थानीय विद्वान पण्डित सचिन जैन द्वारा स्वाध्याय कराया जा रहा है, जो लन्दन समाज को और अन्य मुमुक्षु समाज के लिए यू-ट्यूब पर लोड किए जा रहे हैं। अब तक 35 प्रवचन अपलोड कर दिए गए हैं।
- मङ्गलायतन में प्रातःकालीन स्वाध्याय में श्री पवन जैन द्वारा मोक्षमार्ग-प्रकाशक पर ही चर्चा-वार्ता की जा रही है।
- मोक्षमार्गप्रकाशक के नौ अधिकारों की प्रश्नोत्तरमाला का निर्माण जल्द ही किया जाएगा। जो नए स्वाध्यायियों एवं बच्चों के लिए लाभप्रद होगी।
- मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ का एक बार पुनः निरीक्षण श्री पवन जैन और डॉ० सचिन्द्र शास्त्री के द्वारा किया गया है।
- भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों के पाठ्यक्रम में श्री पवन जैन द्वारा कक्षा 8वीं को, अधिकार - 1, 6; पण्डित सचिनजी द्वारा कक्षा 10वीं को अधिकार - 2, 3, 4; डॉ० सचिन्द्र शास्त्री द्वारा कक्षा 11-12वीं को अधिकार - 7, 8, 9 पढ़ाया जा रहा है।

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
पण्डित टोडरमलजी का समाधि दिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : दिनांक 01 नवम्बर 2019 को आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी का समाधि दिवस का कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमें पण्डित टोडरमलजी के परिचयपूर्वक उनके उपकार को स्मरण करते हुए मोक्षमार्गप्रकाशक आदि ग्रन्थों की सार्थकता पर वक्तव्य पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री एवं मङ्गलार्थी छात्रों ने दिया। उपस्थित सभा ने पण्डित टोडरमलजी के उपकारों को ध्यानपूर्वक सुना और अधिक टोडरमलजी के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा व्यक्त की।

पूज्य गुरुदेवश्री का स्मृति दिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : दिनांक 19 नवम्बर 2019 को पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का स्मृति दिवस का कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमें गुरुदेवश्री के परिचयपूर्वक उनके उपकारों का स्मरण किया। इस अवसर पर पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां; पण्डित विनोद जैन, जबेरा; स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री एवं मङ्गलार्थी छात्रों ने दिया। उपस्थित मङ्गलार्थियों ने पूज्य गुरुदेवश्री के उपकारों को ध्यानपूर्वक सुना और पूज्य गुरुदेवश्री के सीडी प्रवचन और अधिक ध्यानपूर्वक, एकाग्रता से सुनने का सभी मङ्गलार्थियों ने प्रण किया।

तत्त्व प्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन : दिनांक 11 नवम्बर से 20 नवम्बर 2019 तक पण्डित विनोद जैन, जबेरा द्वारा द्रव्य-गुण-पर्याय पर कक्षा ली गयी। सभी मङ्गलार्थियों ने कक्षाओं का उत्साहपूर्वक लाभ लिया।

अष्टाह्निका महापर्व सानन्द सम्पन्न

अजमेर : श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के तत्त्वावधान में सीमन्धर जिनालय, पुरानी मण्डी, अजमेर में कार्तिक माह की अष्टाह्निका पर्व दिनांक 4 नवम्बर से 11 नवम्बर 2019 के मध्य सम्पन्न हुआ। इन आठ दिनों में श्री राजमल पवैया रचित 'श्री सिद्ध परमेष्ठी विधान' का प्रथम बार आयोजन हुआ। विधानाचार्य पण्डित देवांशु जैन, बण्डा थे। वैद्यरत्न पण्डित दीपक जैन, जयपुर ने आठों दिन स्वाध्याय कराया। इस अवसर पर ट्रस्ट के अध्यक्ष नरेश लुहाड़िया, दिल्ली एवं ट्रस्टी श्री विनय लुहाड़िया, मुम्बई सपत्नी उपस्थित रहे।

वैराग्य समाचार

श्रद्धांजलि सभा

तीर्थधाम मङ्गलायतन में शोक सभा का आयोजन

अध्यात्म रत्नाकर राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित जैनदर्शन के मूर्धन्य विद्वान श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के यशस्वी प्राचार्य पण्डित श्री रतनचन्द भारिल्ल का शान्त परिणामों से देह विलय दिनांक 12 नवम्बर 2019 को दोपहर में हो गया।

एक और सूर्य अस्त हो गया... हमारे बड़ा दादा

उनका प्रेरणादायी व आकर्षक जीवन हमें हमेशा मार्गदर्शन देता रहेगा। प्रवचन रत्नाकर के माध्यम से तत्त्वज्ञान के रहस्य को हिन्दी प्रान्त में जन-जन तक पहुँचाने का मंगल श्रेय आपको जाता है। 'बड़े दादा' ये नाम आपके लिये ही समर्पित है। छोटे विद्वानों से लेकर डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (छोटे दादा) तक सभी लोग आपको बड़े दादा कहकर पुकारते थे। आप सारे जग के बड़े दादा थे। मुमुक्षु समाज को आपकी लेखनी से अनेक साहित्यिक लाभ हुआ है। समाज आपका चिर ऋणी रहेगा।

किसी के समझाने से समझ में नहीं आता, यह बात आदरणीय बड़े दादा श्री सोनगढ़ के प्रसंग में सुनाया करते थे बताया करते थे कि जब हम लोग घर जाते थे लोगों को इन सिद्धान्तों के बारे में बताते थे तो लोग बोलते थे फिर सोनगढ़ क्यों जाते हो ? तो वही कहा करते थे इसी बात को दृढ़ करने के लिये किसी के समझाने से किसी को समझ में नहीं आता इसके लिये जाते हैं, इसके लिये वे पेट्रोल से गाड़ी नहीं चलती आदि आदि सिद्धान्तों को बताया करते थे।

आपका सम्पूर्ण जीवन आदर्शमय था। आदरणीय दादाश्री के बारे में सभा में उपस्थित पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र जैन आदि लोगों ने दादाश्री के जीवन से परिचय करवाया। उनके अनुभवों को, सभा को अवगत कराया। अन्त में 9 बार णमोकार मन्त्र पढ़कर बारह भावनाओं का पाठ किया गया। सभी ने श्रद्धांजलि अर्पित की।

जल से कमल भिन्न है, बड़े दादा रतनचन्दजी का दिल

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल बड़े दादा के नाम से सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज में जाने जाते थे। लोग बड़े दादा इसलिए कहते थे कि ये परिवार में बड़े थे, टोडरमल स्मारक के वरिष्ठ प्राचार्य पद पर थे तथा संस्कार कथा साहित्य के अग्रणीय विद्वान रहे। लेकिन बड़े दादा को मैंने आज तक बड़ा नहीं देखा, सहज, सरल, विनम्र, हंसमुख, लघु देखा। ऐसे दादा का मेरा गुरु-शिष्य का सम्बन्ध रहा, लेकिन गुरु (बड़ा) सम्बन्ध नहीं देखा। साधर्मी वात्सल्य का सम्बन्ध रहा, टोडरमल स्मारक में साथ में रहने से पता लगा कि कैसे जीवन जिया जाता है। मैंने कभी उन्हें परिवार के कार्यों से जुड़ता हुआ नहीं देखा, जबकि बड़ी बाई कमलाबाई का पुत्र शुद्धात्मप्रकाश आदि का दादा के प्रति विशेष स्नेह रहा, लेकिन दादा उनके कार्यों से निश्छल रहे, उसका कारण मैंने जाना तो वे हमेशा कहते थे कि प्रसन्न व निवृत्त रहने का एक ही उपाय है, हमेशा पॉजिटिव रहो, वे हर कार्य करनेवालों को प्रोत्साहन देना, हर काम की सहज स्वीकृति देना, वे परिवार के व्यक्तियों के प्रति ही नहीं बल्कि टोडरमल स्मारक के हर विद्यार्थी या कर्मचारी के प्रति सहज सरल रहे। उसका परिणाम है कि आज उनका परिवार एवं टोडरमल स्मारक की प्रत्येक गतिविधियाँ अविरलरूप से चल रही हैं। वे हर कार्य देखने के बाद भी जल से भिन्न कमल की तरह हैं। जीवन कैसे जीना यह बड़े दादा से सीखने को मिला है।

साहित्य समाज का दर्पण है लेकिन दादा का साहित्य दादा का जीवन है। हम उनके साहित्य को पढ़कर अपना जीवन बना सकते हैं।

— अशोक लुहाड़िया, तीर्थधाम मंगलायतन, अलीगढ़

आदरणीय बड़े दादा के अन्तिम शब्द....

अध्यात्मरत्नाकर आदरणीय पण्डित रतनचन्द भारिल्ल (बड़े दादा) के अन्तिम शब्द जो उन्होंने पूर्व में उनके द्वारा रचित उपन्यास 'विदाई की बेला' के अन्तिम अध्याय में लिखे थे।

सभी रिश्ते शरीर के रिश्ते हैं। जब तक यह शरीर है, तब तक आपके सब रिश्तेदार हैं, शरीर बदलते ही सब रिश्ते बदल जाऐंगे। शरीर से ही इन रिश्तों की पहिचान है। बताओ! आत्मा को कौन पहचानता है? जब किसी ने किसी के आत्मा को कभी देखा ही नहीं है तो उससे पहचान कैसे?

इस शरीर के भाई बन्धुओं ! बेटे-बेटियों व कुटुम्बीजनों ! मेरा आपसे सबसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। ये सब रिश्ते जिसके साथ थे, उससे ही जब मैंने सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है तो अब आपसे भी मेरा क्या सम्बन्ध ? जब देह ही अपनी नहीं है तो देह के रिश्तेदार अपने कैसे हो सकते हैं ? अत: मुझसे मोह ममता छोड़ो, मैं भी इस दु:खदाई मोह से मुँह मोड़कर सबसे सम्बन्ध छोड़ना चाहता हूँ। ऐसा किये बिना सुखी होने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

अत: सब ऐसा विचार करें कि— 'मैं शरीर नहीं, मैं तो एक अखण्ड ज्ञानानन्द स्वभावी अनादि-अनन्त एवं अमूर्तिक आत्मा हूँ तथा यह शरीर मुझसे सर्वथा भिन्न जड़ स्वभावी, सादि-सान्त, मूर्तिक पुद्गल है। इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

जिसे आपने कभी न देखा, न पहचाना, उससे मोह कैसा ? अत: आप मुझसे राग-द्वेष का भाव छोड़ें। मैं भी आप सबके प्रति हुए मोह एवं राग-द्वेष को छोड़ना चाहता हूँ। आप लोग मेरे महाप्रयाण के बाद खेदखिन्न न हो तथा आत्मा-परमात्मा की साधना-आराधना में सदा तत्पर रहें।

बस, यही मेरा आपको सन्देश है, उपदेश है, आदेश है और आशीर्वाद है। इसे जिस रूप में चाहे ग्रहण करें। पर इस कल्याण के मार्ग में अवश्य लगें। इस स्वर्ण अवसर को यों ही ना जाने दें।

आदरणीय बड़े दादा के अन्तिम प्रेरक शब्द हैं, जिसको हम सब अपने जीवन में उतारकर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें, इसी मंगलमय भावना के साथ एवं आप और हम अपने जीवन के लिए प्रेरणा लें।

उदयपुर : श्री कन्हैयालाल दलावत का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। आप संस्कार तीर्थ शाश्वत धाम व श्री कुन्दकुन्द कहान शाश्वत पारमार्थिक ट्रस्ट, उदयपुर के संस्थापक ट्रस्टी थे।

फिरोजाबाद : श्री वीरेन्द्रकुमार जैन का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। आप मङ्गलार्थी अनिकेत के दादाजी थे।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों - ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल को श्रद्धा सुमन

जयपुर के ही नहीं रतन तुम, विद्वत रत्न जहान के।
पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, सार्थक नाम महान है॥
पण्डित टोडरमल स्मारक, ट्रस्ट बना जब जयपुर में।
आये थे गुरुदेवश्री उद्घाटन करने॥
कहा गोदिका भाग्य तुम्हारे भारिल्ल सा परिवार है।
डॉ. भारिल्ल, रतनचन्द सा कर्मठ योगी॥
आप सरलता की मूरत थे, कैसे नहीं तुमको जाने।
सब बच्चों पर छत्रछाय पुत्र तुल्य सबको पाले॥
ज्ञान दान तो देते ही थे, लाड़-प्यार-आहार दिया।
कौन शास्त्र जो भुला पायेगा, जो वात्सल्य अपार दिया॥
विपुल शास्त्र भण्डार आपकी, कलम कला से उमड़ पड़ा।
बहुत सरल शैली में रचकर, जिनशासन उपकार किया॥
'प्रवचन रत्नाकर' गुजराती से हिन्दी में बना दिये।
'इन भावों का क्या फल होगा', शास्त्र जगत को भेंट किये॥
'संस्कार डालो बच्चों में, तव समाधि हो जाएगी।
अरे 'विदाई की बेला' पढ़ लो, सही दिशा मिल जाएगी॥
गुरु कहान क्रमबद्ध से सारा जीवन बदल गया।
अध्यातम का रंग चढ़ा तो, धन्धा सारा भुला दिया॥
अरे हजारों शास्त्री गढ़कर, तुमने जग को भेंट दिये।
जिनशासन ध्वज लहराने को, मंगलमय अवतार लिये॥
आप 'बड़े दादा' कहलाते, सही बड़प्पन के गुण थे।
आप श्री प्राचार्य वहाँ, सचमुच में प्राचार्य रहे॥
जीवन पूरा किया समर्पण, ज्ञान दान के यज्ञ में।
जीवन सचमुच किया सार्थक भावी सिद्ध समृद्धि में॥
आप जहाँ हो वहीं आपकी, मंगलमय हो साधना।
विनयांजलि सहज स्वीकारो, बन जाओ परमात्मा॥

— पण्डित राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	: SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	: HDFC BANK
BRANCH	: RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	: 50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	: HDFC0000380
PAN NO.	: AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, नि:शुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
पण्डित टोडरमलजी का समाधि दिवस

पूज्य गुरुदेवश्री का स्मृति दिवस

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

कैसा है शुद्धोपयोगी सम्यग्दृष्टि?—जिसको मोक्षलक्ष्मी का पाणिग्रहण करने की तीव्र इच्छा प्रवर्तती है। उसे ऐसा अनुराग है कि 'अभी मोक्ष में जाकर, मोक्षलक्ष्मी का वरण कर लूँ'; उसने अपने हृदय में मोक्षलक्ष्मी का आकार उत्कीर्ण कर रखा है; वह उसकी शीघ्र प्राप्ति चाहता है। इसी कारण वह किंचित् भी रागपरिणति के प्रदेश नहीं बाँधता है अर्थात् किंचित्मात्र भी राग नहीं होने देता।

वह इस प्रकार विचार करता है—'यदि मेरे स्वभाव में रागपरिणति ने आकर, किंचित् भी प्रवेश किया तो मुझे वरण करने केलिए जो मोक्षलक्ष्मी उद्यत हुई है, वह लौट जाएगी; इसलिए मैं रागपरिणति को दूर ही से छोड़ता हूँ।'

– पण्डित गुमानीरामजी, समाधिमरण का स्वरूप

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com